॥ॐ॥

॥ श्रीवीतरागायनमः ॥

अथ आत्मभ्रमोच्छेदन भानुः

अर्थात्

॥ शुद्धसमाचारिमण्डन ग्रन्थ की पीठिका लिख्यते ॥

विदित हो कि बाइसटोला ढूंढियों को छोड़कर सम्वेगपक्ष धारण करनेवाले श्रीबूंटेरायजी के पास में दीक्षा लेकर न्यायाम्भोनिधिपदधारक श्रीआत्मारामजी (आनन्दविजयजी) ने "जैनसिद्धान्तसमाचारि" नाम ग्रन्थ बनायके प्रसिद्ध कियाहै। उस ग्रन्थ को देखकर हमको विचार उत्पन्न होताहै कि श्रीआत्मारामजी ने "न्यायाम्भोनिधि" ऐसा विशेषण अपने नाम के साथ में लगाया। परन्तु इस विशेषण का गन्ध भी उनके न आया। अपने को अन्यायमार्गमें चलाया। सिद्धान्तशब्द का और अर्थ किञ्चिन्मात्र भी उन्होंने न पाया॥

(प्रश्न) श्रीआत्मारामजी तो बड़े पण्डित और जगत् में प्रसिद्ध हैं फिर इस सिद्धान्त शब्द का लक्षण और अर्थ उनकी समझमें न आया यह बात क्योंकर बनेगी।

(उत्तर) भोदेवानुप्रिय तेरा सन्देह दूर करने के वास्ते पहिले हम सिद्धान्त शब्द का लक्षण कहते हैं। शास्त्रोंमें इसका ऐसा लक्षण कहा है

कि (वादिप्रतिवादिभ्यो निर्णीतोअर्थोसिद्धन्तः) अर्थः—वादी अ प्रतिवादी दोनों का निर्णीत अर्थात् निश्चय (.नेस्सन्देह) किया जो उसका नाम सिद्धान्त है। जो आत्मारामजी इस अर्थ को समझते तो (जैनसिद्धान्तसमाचारि) ऐसा इस ग्रन्थ का नाम कदापि न रखते। क्योंकि देखो वर्तमानकाल में जैनमत में दिगम्बर, श्वेताम्बर आदि भेद होने से अथवा शास्त्रों के विषम्वाद होने से आपस में वाद-विवाद चलरहा है। जिस जगह वाद-विवाद है उस जगह सिद्धान्त का कहनाही नहीं बनता।

दूसरा औरभी सुनों—कि एक श्वेताम्बर आमनाय में ही जोकि मूर्त्ति-आदिक के नहीं माननेवाले वाईसटोला तेरहपन्थी लोग हैं सो इसी जैन-शास्त्रानुसार मूर्त्तिआदिक अनेक वातों में वाद-विवाद कररहे हैं तो जब एक श्वेताम्बर आमनाय में ही वाद-विवाद शास्त्रों से कररहे हैं तो फिर सिद्धान्त शब्द क्योंकर बनेगा।

तीसरा औरभी सुनों—कि जो मूर्त्ति के माननेवाले हैं उनलोगों में भी गच्छादिक के भेद होने से अनेक तरह के वाद-विवाद चलरहे हैं तो फिर सिद्धान्त शब्द किस रीति से बनेगा।

चौथा औरभी सुनों—कि जो एकतपगच्छ में ही १४ या १५ गद्दी हैं उनमें भी आपस में विषम्वाद होरहा है। कोई तो चौथ की संवत्सरि। कोई पंचमी की संवत्सरि। कोई तीन स्तुति। कोई चार स्तुति। कोई सामायिक पारतीदफे इरियावही करता है। कोई नहीं करता है। कोई तो करेमिभन्ते पहिले और इरियावही पीछे करते हैं। और कोई इरियावही पहिले और करेमिभन्ते पीछे करते हैं। इत्यादि आपस में विषम्वाद होने से सिद्धान्त शब्द क्योंकर बनेगा।

पांचमा औरभी सुनों—कि श्रीसत्यविजयजी उपाध्यायजी आदि से पीत वस्त्र धारण करनेवालों की परम्परा चलरही है उसी परम्परा में श्रीआत्मारामजी श्री अपनेको मानते हैं और उसी परम्परा में लिखते हैं सो इस परम्परा में भी पीत वस्त्र धारण करनेवाले आपस में वाद-विवाद करते हैं सो किंचित् दिखाते हैं। कोई तो दीक्षा देकर चार आठ दस वर्ष तक योगवहायकर छेदोपस्थापनी बड़ी दीक्षा न करे और इतने वर्ष के बाद बड़ी दीक्षा दें तो भी उस छोटी दीक्षा से ही दीक्षित साधु गिने। और कितनेही छोटी दीक्षा दिये के पीछे ६ मास में योग वहायकर बड़ी दीक्षा दे तब तो उसको साधु माने अथवा दो चार वर्ष किसी कारण से योग वहाने वा बड़ी दीक्षा देने में देर होजाय तो फिर जबतक उसको बड़ी दीक्षा न होय तबतक छोटी पर्याय में गिने जब उसकी बड़ी दीक्षा होय तबसे उसको साधु माने॥ और कोई कहते हैं कि मुखपत्ती कान में घाल के व्याख्यान देना। और कोई कहते हैं कि मुखपत्ती कान में नहीं घालना केवल हाथ में रखकर व्याख्यान देना। और कोई तो गुजरात में छिपे लोग जैनी हैं उनकी कच्ची रसोई लेना निषेध करते हैं। और जो उन छिपों में से कोई दीक्षा लेय अर्थात् साधु होय तो उसको माडली में नहीं बिठाते हैं। और कोई उन जैनी छिपों की कच्ची रसोई लेते हैं। और कोई छिपा दीक्षा ले तो उसको अपनी साधु-माडली में बिठायकर अहार पानी करते हैं। और शान्तिकर प्रतिक्रमण में कोई तो रोजीना कहते हैं। और कोई सप्तमी तेरसी को ही कहते हैं। और कोई चौदस के दिन कहते हैं। इस रीति से इनके एक पीत वस्त्र धारण करनेवाले सत्यविजयजी उपाध्यायजी के परम्परावालों में ही ऊपर लिखे अनेक तरह के विषम्वाद हैं तो फिर "सिद्धान्तशब्द" क्योंकर बनेगा।

छठा औरभी सुनों–कि श्रीबूंटेरायजी (बुद्धिविजयजी) मुखपत्ती की चर्चा में ४४ के पृष्ठ में लिखते हैं कि जैनधर्मी मेरे सुनने में नहीं आया कि किस क्षेत्र में विचरता है वा केती दूर है। और श्रीआत्मारामजी जैनतत्त्वादर्श के तीसरे परिच्छेद में लिखते हैं कि जो इस काल में साधु नहीं माने वो मिथ्यादृष्टि है। इस रीति से गुरु शिष्य का ही विषम्वाद होने से "सिद्धान्त शब्द" क्योंकर वनेगा।

सातमा औरभी सुनों–कि श्रीआत्मारामजी जैनधर्मविषयिक प्रश्नोत्तर पृष्ठ १७०। १७१ में लिखते हैं कि (इस हेतु से हम इस काल के जैनमतियों को वहुत नालायक समझते हैं) तो इस कहने से सज्जन पुरुष विचार करें कि जव श्रीआत्मारामजी इस कालके जैनमतियोंही को वहुत नालायक समझते हैं तो फिर इनको जैनसिद्धान्तसमाचारि की खवरही क्योंकर पड़ेगी और यह जैनसिद्धान्त का रहस्य समझकर कैसे विंश्वास करेंगे क्योंकि जैनमति तो नालायक ठहरे तो नालायक के वचन पर कौन विश्वास करता है। इस रीति से हम अनुमान् करते हैं कि "सिद्धान्त" शब्द के लक्षण और अर्थ को न समझे। इस ऊपर के लेख को बुद्धि-जन अपनी बुद्धि में विचार करें कि इनको इस शब्द का अर्थ न मालूम हुआ, केवल न्यायाम्भोनिधि अपने नाम का विशेषण लगादिया। भोले जीवों को भ्रमजाल में फसाने से परभव का कुछ विचार न किया। इसलिये इस पुस्तक का नाम "जैनसिद्धान्तसमाचारि" न ठहरा किन्तु "अजैनअपसिद्धान्त" नाम रखते तो ठीक होता॥

अव अपर नाम (शुद्धसमाचारिप्रकाश, उत्तर) इसके ऊपर भी हम विचार करते हैं तो हास्य सहित आश्चर्य उत्पन्न होता है कि श्रीआत्मारामजी इतने विद्वान होकर शब्द को विना विचारे ही "उत्तर"

नाम रखदिया ! अजी साहेब कुछ विचार तो कियाहोता कि इस (शुद्ध) शब्द का अर्थ क्या है और उसका (उत्तर) क्या बनेगा । क्योंकि देखो (शुद्ध) शब्द का अर्थ सबकोई स्पष्ट अच्छी तरह से जानते हैं कि शुद्ध शब्द निर्मल अर्थात् मलकरकें रहित जिसमें नहीं है किसी तरह का मैल इसका नाम 'शुद्ध' है—ऐसी जो समाचारि अर्थात् आचरणा उसका है प्रकाश ॥ उसका जो (उत्तर) सो तो उससे विपरीत अर्थात् (अशुद्ध) बनता है । इसलिये श्रीआत्मारामजी का अभिप्राय ऐसा मालूम होता है कि "अशुद्धसमाचारि" नाम ग्रन्थ बनादिया ॥

इस लेख को देखकर हमारे हृदय की करुणाने जोर किया । आत्मार्थिभव्यजीवों के वास्ते उपकार जान इस पुस्तक उत्तर देना सत्य समझ लिया ॥ अब इनकी प्रस्तावना की समिक्षा करते हैं सो भी पाठकगण सुनें । यथाः—

(प्रश्न) आप प्रस्तावना की समिक्षा करोगे सो तो ठीक है परन्तु "जैनसिद्धान्तसमाचारि" श्रीआत्मारामजी की बनाईहुई है नहीं किन्तु उनके शिष्य श्रीकान्तिविजयजी तथा श्रीअमरविजयजी की बनाई है । फिर श्रीआत्मारामजी का नाम उद्देश लेकर क्यों समिक्षा करते हो ।

(उत्तर) भो देवानुप्रिय ! मेरेको इस पुस्तक के देखने से अनुमान होता है कि श्रीआत्मारामजी के रचेहुये प्रयोगों की भाषावर्गना की अथवा उन पञ्जाबी बोली मिश्रित होने से श्रीआत्मारामजी की ही बनाई हुई मालूम होती है । दूसरा एक "गप्पदीपिका समीर" नाम की पुस्तक पार्वतीढूंढनी का खंडन बनायकर पोता चेला वल्लभ विजयजी के नाम से प्रगट करी थी । और उसकी समिक्षा में "चर्चाचन्द्रोदय" पण्डित दिगम्बरी जियालाल के शिष्यवर्गों ने छपाया था । इसी अनुमान से हम भी

जानते हैं कि यह पुस्तक श्रीआत्मारामजी की ही वनाई हुई है । तीसरा औरभी है कि, कान्तिविजयजी आदिक जो शिष्यवर्ग हैं उनकी विद्वत्ता से मैं अच्छीतरहसे वाकिफ हूं कि जैसी उनकी विद्वत्ता है । हां अलवत्तः श्रीविषनचंदजी आदिक जो उनके साथही ढूंढकमत को छोड़ा था उनमें तो कई विद्वान थे सो वे विचारे तो आयुकर्म के पूर्ण होने से शान्त होगये । और वर्तमानकाल में जो शिष्यवर्ग की समुदाय है उनमेंसे एक शान्तिविजयजी वड़ा शूरवीर विद्वान था सो उनको श्रीआत्मारामजी ने समुदाय से अलग करदिया सो कारण तो श्रीआत्मारामजी वा उनकी समुदायवाले जानें—हमको इस झगड़े से क्या प्रयोजन है । कदाचित् तुमको यही आग्रह है कि श्रीआत्मारामजी की वनाई हुई नहीं उनके शिष्योंकी है तो हमारा इसपर यह कहना है कि जिस समय उनके दोनों शिष्यों ने पुस्तक वनायकर श्रीआत्मारामजी को अवश्यमेव दिखाई होगी तो फिर तुम्हारा विकल्प करना व्यर्थ है । क्योंकि समुदाय का जो मालिक है उसकी आज्ञा विना समुदायवाला कोई काम नहीं करसक्ता है । और जो मालिक की आज्ञा विना काम करे तो वह समुदाय से बाहर भी निकाला जाता है । इसलिये मेरा श्रीआत्मारामजी का नाम लेकर समिक्षा करना सिद्ध होचुका ॥

अस्तु अब किसी का वनायाहुआ होय परन्तु आत्मार्थि जिनधर्म की रुचिवाले निर्पक्षपात होकर इनके लेख की जो हम समिक्षा करते हैं उसको विचारें सो पेश्तर इनकी पुस्तक का लेख लिख दिखाते हैं:— (विदित हो कि मुनि श्रीआत्मारामजी ने जो जैनतत्त्वादर्श १ अज्ञान-तिमिरभास्कर २ और जैनमतवृक्षादि संस्कृतादि पुस्तकानुसार जैनधर्मियों के पढ़ने के वास्ते भाषा में रचे हैं तिनमें जो खरतरगच्छ की उत्पत्ति

संवत् १२०४ में श्रीजिनदत्तसूरिजी से लिखी है तिसको वांचके कितनेक खरतरगच्छ के यति और श्रावकलोग भडकते हैं और अनेक तरह के वचन बोलकर द्वेष पोषण करते हैं जब द्वेष हृदय में न समाया पं० प्र० श्रीरायचन्द्रमुनि की रची शुद्धसमाचारि की पोथी पण्डित श्रीमोहनलालजी यति पासे शुद्ध करवाय के मुर्शिदावाद निवासी रायबहादुर मयासिंह मेघराज कोठारी ने सर्वजनश्रेयार्थ छपवाई है) अब इनकी समिक्षा करते हैं। इनकी पुस्तक की छठी पङ्क्ति में (भडकते हैं) इस शब्द को देखकर हमको बहुत आश्चर्य उत्पन्न होता है कि इस पुस्तक के बनानेवाले को मृषावाद अर्थात् झूठ बोलने में कोई तरह का परलोकआश्रयभय नहीं दीखता है क्योंकि जो परभव का भय होता तो ऐसा लेख न लिखते कि (श्रीआत्मारामजी की बनाई हुई पुस्तक देखकर भडकते हैं और द्वेष हृदय में न समाया तब शुद्धसमाचारि पोथी छपवाई) यह लेख उनका मिथ्या अर्थात् झूठा है क्योंकि देखो मुनि हंसविजयजी मकसूदाबाद अजीमगञ्ज में ६ महिने तक रहे और उस जगह रायबहादुर बाबू मेघराज कोठारी से चर्चा हुई। तिसपर शुद्धसमाचारि की पुस्तक छपी थी। उस शुद्धसमाचारि की पुस्तक छपने का आदि से अन्त तक रायबहादुर मेघराज कोठारी ने समक्ष (आमनेसामने) हम से सब हाल कहा। और उन्हों ने सब हाल चिठी में लिखकर भी मेरेको भेजा सो उस चिठी में से शुद्धसमाचारि जिस कारण से छपी है सो कारण लिखते हैं:—

कारण यह है कि, मुनि हंसविजयजी यहां छः मास रहे जिस समय एक दिन मैंने व्याख्यान से उठकर महाराज से कहा था कि आगे तो सब गच्छ की समाचारि एक थी अब कालदोष से समाचारि में भेद देखाजाता है। तब मुनिजी ने कहा सब गच्छ की समाचारि एक थी सो

हमको दिखाना । हमारे काम के सबब से दिखाने में देरी हुई थी जिसमें सम्पतविजयजी गोचरी लेनेको गये जब १०।५ घर में कहा कि मेघराजजी सब गच्छ की समाचारि एक कहगये थे लेकिन दिखाने सके नहीं। हमलोग विहार कर जांयगे जब पीछे से खरतरगच्छ की समाचारि सची कहेंगे सब गच्छ समाचारि एक होती तो दिखाते । हमारे तपगच्छ की समाचारि सची है । खरतरगच्छ की झूठी है । जिसपर जिन्हों के घरमें वहरने जाकर कहा था उन्होंने आकर हमसे कहा । जब आवश्यकसूत्रजी की छोटी टीका और बडी टीका, चूर्णी, योगशास्त्र हेमाचार्य महाराज का बनाया, और श्रीदेवेन्द्रसूरिजी का बनाया श्राद्धदिनकृत्य, और देवगुप्तसूरिजी की ९०० संवत् की बनाई हुई नवतत्वप्रकरण की टीका इत्यादि सब ग्रन्थ हमने दिखलाये, तब मुनि हंसविजयजी बांचकर सिर नीचा किया और बोले कि महाराज आत्मारामजी से इसका जबाब लिखाकर आपको कहेंगे । जिसपर श्रीआत्मारामजी ने महानिशीथ दशवैकालिक आदिक पाठ लिख भेजे जिसमें सामायिक का विषय नहीं था किन्तु सामायिक के बिना अन्य अन्य विषय था तो भी पण्डिताभिमान से अपना वचन सिद्ध करने के वास्ते जिनाज्ञा विरुद्ध महा दोष है तिनका विचार नहीं करते उत्सूत्रपाठ लिख भेजे (जैनसिद्धान्तसमाचारि में भी उत्सूत्र पाठ छपा दिये जिसमें सामायिक की विधि नहीं है केवल अन्यान्य विषयों का अधिकार है) जिसपर हम छोटे मोटे ३० ग्रन्थ लेगये (१२०४ में खरतरगच्छ की उत्पत्ति लिखी) उससे ठाणांगजीप्रमुखग्रन्थ की टीका में श्रीअभयदेवसूरिजी की गुरुपरम्परा दिखाई । जिनेश्वरसूरिजी से खरतरगच्छ भया सो अभयदेवसूरिजी के दादा गुरु थे सो दिखाया इत्यादि चर्चा के समय में गुजराती वा मकसूदाबाद के दो तीन गच्छ के श्रावक

लोग बैठे थे। मुनि रायचन्दजी भी मुनि हंसविजयजी को सूत्रवाचना देतेथे वा व्याकरण पढ़ाने को पण्डित नन्दरामजी हाजिरथे। उन लोगों ने आवश्यकजी सूत्र आदिककी टीका, चूर्णि और छुटकर ग्रन्थ देखकर आपकी असमंजसता प्रगट कहने लगे। जिसपर हम तो क्षमा कररहे थे पर और श्रावकलोगों ने कहा कि यह चर्चा आपने करी और हमलोगों ने सुनी मुद्दा इसकी पुस्तक बनवानी चाहिये बहुत उपयोगी होगा। तब इन्हों के आग्रह से पुस्तक १००० छपवाई जिसमें (१६) प्रश्न समाचारिशतक के अनुचार प्रगट किये सूत्र मुजब। हमारे कुछ रागद्वेष का कारण नहीं था सो मालूम करना यह लेख रायबहादुर बाबू मेघराज का मेरे पास मौजूद है सो पाठकगण बुद्धिपूर्वक विचार करें कि ऊपर लिखे माफिक तो इनके ग्रन्थ बनाये हुये देखने से (खरतरगच्छवालों के हृदय में द्वेष न समाया। जिसपर पुस्तक शुद्धसमाचारि की छपवाई है) इस लेखमें इस शुद्धसमाचारिप्रकाश का उत्तर देनेवाले को मृषावाद अर्थात् झूठ बोलने का त्याग नहीं है। जो झूठ बोलने का त्याग होता तो मुनि हंसविजयजी की और रायबहादुर बाबू मेघराज कोठारी की मकसूदाबाद में चर्चा हुई थी उस हकीकत को लिखकर शुद्धसमाचारि का उत्तर देते तो हम जैनसिद्धान्तसमाचारि बनानेवाले को सत्यवादी समझते। जिस पुरुष ने चलतेही मृषावाद के ऊपर कमर बांधी तो आगे के लेखों का तो कहनाही क्या है॥ खैर हमको तो निर्पक्षपात होकर कहना है क्योंकि मेरा कहना कुछ द्वेषबुद्धि से नहीं। मेरेजान में तो जैसे पं० प्र० यतिजी श्रीरायचन्द्रजी हैं, तैसे ही न्यायाम्भोनिधि श्रीआत्मारामजी हैं। दूसरा रायबहादुर बाबू मेघराज कोठारी ने पेश्तर तो मेरे पास जैनसिद्धान्तसमाचारि पुस्तक भेजी फिर इस पुस्तक

की समिक्षा करने के वास्ते इस जगह मेरे पास आया था जब भी कहा था । और फिर उसने मकसूदाबाद जायकर चिठी भेजी तब मैंने उसको लिखा कि इस पुस्तक में ऐसा लिखा है कि "खरतरगच्छवाले यति और श्रावकों के द्वेषबुद्धि हृदय में न समाई इससे यह शुद्धसमाचारि नाम की पोथी छपाई" इसलिये हम तुमको लिखते हैं कि जो तुमने द्वेषबुद्धि से पुस्तक छपवाई है तब तो मेरा समिक्षा करने का कुछ काम है नहीं । और जो शुद्धसमाचारि की प्रस्तावना में लिखा है उस मुजब छपवाई है तो मेरेको खुलासा लिखो । इस लेख के जाने से रायबहादुर मेघराज कोठारी ने जो चिठी लिखकर भेजी और उस चिठी के लेख में जो कुछ मुनि हंसविजयजी से चर्चा हुई उस चर्चा के बाद लोगों के कहने से शुद्धसमाचारि पुस्तक छपवाई; ऐसा लेख चिठी में आया । इस ऊपर के लेख को देखो और इनकी पुस्तक के मुजब लेख को देख कर मध्यस्थ होकर बुद्धिपूर्वक विचार करो यह झूठ बोलनेवाले ठहरे या नहीं । जो यह सत्यवादी होते तो जिस रीति से मकसूदाबाद अजीम-गंज में मुनि हंसविजयजी से और रायबहादुर बाबू मेघराज कोठारी से वार्तालाभ (चर्चा) हुई थी और उस चर्चा के ऊपर मेघराज कोठारी ने शुद्धसमाचारि छपवाई थी उस रीति से यथावत् लिखते तो यह मृषा-वादी न ठहरते सो पाठकगण आत्मार्थि जिनधर्म की रुचिवाले विचारें और पक्षपात को न रक्खें क्योंकि मेरेको किसी का पक्षपात नहीं है । क्योंकि मेरेको पूज्यपाद श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज ने एक श्लोक कहा है सो उसके ऊपर मेरी यथावत् आस्ता है वो श्लोक यह है ।। यथा—

पक्षपातोनमेवीरो, नद्वेषोकपिलादिषु। युक्तिमद्वचनंयस्य, तस्यकार्यःपरिग्रहः।।

इसलिये मेरेको मध्यस्थभाव से मेरी प्रतिज्ञा मुजिब कहना ठीक है सो

कहना है। और जो इस लेखमें किसी को पक्षपात मालूम होय तो मेरे किये हुये स्याद्वादानुभवरत्नाकर, जिनाज्ञाविधिप्रकाश, शुद्धदेवअनुभव-विचार, द्रव्यअनुभवरत्नाकरादि अनुमान ६ वा ७ ग्रन्थ हैं उनमें जो जो मेरेपर प्रश्नों के आक्षेप किये हैं उनका भी उत्तर मध्यस्थभाव से दिया है जिसकी खुशी होय सो देखो और अपने सन्देह की शान्ति करो ॥ खैर अब दूसरा सुनों कि दसमी पङ्क्ति से इग्यारमी पङ्क्ति तक लिखा है कि (रायबहादुर मयासिंह मेघराज कोठारी ने सर्वजनश्रेयार्थे छपाई है) इस पङ्क्ति को पाठकगण अच्छी तरह से विचार करें कि सर्वजनश्रेयार्थे अर्थात् कल्याण के वास्ते छपवाई तो फिर इनको इसके ऊपर कुविकल्प क्यों उठा और इतना परिश्रम नाहक में उठाया। क्या श्रीआत्मारामजी वा उनकी समुदायवालों को सर्व जन का कल्याण होना अच्छा न लगा तिसपर इतना परिश्रम उठाया। आहाहा क्या बात इस विद्वत्ता की सो श्रीआत्मारामजी भी सर्वजन के कल्याण होने के दुःख से और अक-ल्याण प्रतिपादन करने के वास्ते यह पुस्तक छपाई ॥ गच्छमिमत्तरूप-भङ्ग की गोली गृहस्थियों को खिलाई। आत्मार्थि होगा सो इनके जाल में न फंसेगा भाई। इसवास्ते हमने भी किंचित् समिक्षा कर दिखाई। हां अलबत्तः जो श्रीआत्मारामजी ने जैनतत्वादर्शादि ग्रन्थ तैयार कर छपवाय के प्रसिद्ध किये अर्थात् जाहिरात किये थे उसी वक्त जो यति वा श्रावकलोग छपवाते तब तो इनका द्वेषबुद्धि लिखना ठीक था क्योंकि जैनतत्वादर्श सं. १९४० में छपगया था। जो द्वेष होता तो उसीवक्त खरतरगच्छवाले छपवाय देते। इसलिये द्वेष का लिखना इनका मिथ्या अर्थात् झूठ सिद्ध होगया। शुद्धसमाचारि के ऊपर उत्तर लिखने से पाठकगणों को खरतरगच्छ से द्वेष खुलगया खैर। अब इसी पङ्क्ति में

से (यद्यपि हमको खरतरगच्छमें जो२ शुद्धपरूपक आचार्य आदि होगये हैं वे सर्व प्रमाण है और तिन महाराजों के चरणों के हम दास हैं और हमारा किसी भी शुद्धपरूपक पुरुषों के साथ विरोधभाव नहीं है) यहां-तक तो लिखना ठीक है इसके आगे (परन्तु उस पोथी में जो२ रचने-वाले ने अयोग्य बातें लिखी है तिनका उत्तर तो जरूर ही लिखना चाहिये ऐसा विचार करके भव्यप्राणियों के उपकार के वास्ते हम उत्तर लिखने के वास्ते प्रवृत्तमान हुए हैं) यह अठारहवीं पङ्क्ति तक का लेख है ॥ इस लेख को देखकर हमको साफ अनुमान सिद्ध होता है और आत्मार्थि पाठकगण भी इसको विचारें कि (रचनेवाले ने अयोग्य बातें लिखी है तिनका उत्तर तो जरूरही लिखना चाहिये) इस लेख के देखने से लिखनेवाले का द्वेष प्रत्यक्ष दीखता है क्योंकि (उत्तर तो जरूरही लिखना चाहिये) इस द्वेष के अन्तरगत (भव्यप्राणियों के उपकार के वास्ते हम उत्तर लिखने के वास्ते प्रवृत्तमान हुए हैं) यह लेख लिखना व्यर्थ हुआ । क्योंकि जो पोथी रचनेवाले ने अयोग्य बातें लिखी है उन अयोग्य बातों का जो तुम उत्तर देते हो उस उत्तर में तो भव्यप्राणियों का कुछ उपकार है नहीं क्योंकि यह तो तुम्हारे ही मतलब की बात है जैसे तुमको उन्हों ने लिखा होगा तैसाही तुम उनको लिखोगे । फिर किसतरह भव्यप्राणियों का उपकार होगा सो तो नहीं किन्तु अपने२ दृष्टि रागियों में द्वेषबुद्धि का वर्ताव होगा । और इस पुस्तक से उपकार अथवा अपकार भव्यप्राणियों का होगा सो तो हम समस्त पुस्तक की समिक्षा करे के बाद अन्त में लिखेंगे वहांपर निस्सन्देह होजायगा । अब हम इस (अजैनअपसिद्धान्समाचारि) पुस्तक में जितने२ अक्षरों की वा पङ्क्ति की समिक्षा करेंगे उतनीही पङ्क्ति वा अक्षरों को ब्रकेट (कोष्टक)

में लिखदेंगे अथवा अमुक पङ्क्ति से अमुक पङ्क्ति तक देखो ऐसा लिख-देंगे जिससे पाठकगण उस पुस्तक में देखलें क्योंकि जबतक पहली पुस्तक और पुस्तक की समिक्षा दोनों पास में नहीं तबतक यथावत् लेख समझ में नहीं आता। इसलिये दोनों पुस्तकों को पास में रखकर सत्य असत्य को विचारे। पङ्क्ति अठारवीं में लिखा है कि (प्रथम जो यह पुस्तक छपवाई है सो पीसे को पीसा है) इस लेख को देखकर हमको हास्य उत्पन्न होता है सो एक मसल लिखकर दिखाते हैं। बाजार के बैठनेवाली कुंजडी कहती है कि मेरा बोर मीठा दूसरे का खट्टा। यही बात इस पुस्तक के लेख से सिद्ध होती है क्योंकि देखो जैसे श्रीआत्मारामजी ने संस्कृत आदि पुस्तकानुसार जैनतत्वादर्शादि ग्रन्थ रचे हैं तैसे ही पं० प्र० रायचन्दजी ने भी श्रीसमयसुन्दरजी उपाध्याय कृत्य संस्कृतभाषा में समाचारिशतक के अनुसार शुद्धसमाचारि भाषा में रची है तो उनका लेख तो पीसे का पीसना होगया और तुम्हारा न हुआ क्या बात इस विद्वत्ता की खैर। इसी उन्नीसवीं पङ्क्ति में लिखा है कि (तपगच्छ और खरतरगच्छ के परस्पर कितनेही खण्डन मण्डन के ग्रन्थ बनेहुए हैं तो फिर उस पुस्तक के छपवाने से हमभी कुछ हैं इससे अतिरिक्त कोई अन्य फल मालूम नहीं होता है) इस लिखने से भी प्रत्यक्ष मालूम होता है कि इस पुस्तक के लिखनेवालेने वर्तमान में लोगों को लड़ानेके वास्ते इस तरह के लेख लिखकर जाहिरात किये हैं क्योंकि वर्तमानकाल में गच्छ के ममित्तभाव में फसेहुए लोग आपस में लड़तेरहें तो हमारी मानपूजाप्रतिष्ठा बनीरहे न लड़ने से हमारेको कौन पूछेगा। इस हेतु से दबीहुई अग्नि को १५ | १६ वर्ष से उखाड़ कर सिलगाना शुरू किया सो अब प्रचंड किया चाहते हैं। सो मेरी बुद्धिअनुसार तो

वर्तमानकाल में जो आचार्य उपाध्याय यतिलोग और उनके माननेवाले श्रावकलोग इस कदाग्रह के जाल में कदापि न फसेंगे। और अपना परस्पर प्रीतिभाव सदा से रखते हैं सो ही रक्खेंगे। हां अलबत्तः पंन्नतर धर्मसागर उपाध्याय ने तप खरतर का विरोध चलाया था और ग्रन्थभी स्वय कपोलकल्पित परभव का भय न रखते रचे थे तिसपर जो श्रीपूज्य लोग आचार्य उपाध्याय यति वाजते थे उनमें तो उसका चलाया हुआ कदाग्रह न चला। हां समाचारि में कुछ फरक पड़ाहोय तो हम नहीं कहसक्ते परन्तु कितने ही गुजराती श्रावक हठग्राही उस धर्मसागरजी की पूंछड़ी पकड़बैठे और कुछ दिन चलाते रहे सो कुछ दिन चला। फिर पूज्यपाद श्रीमत् यशविजयजी उपाध्यायजी ने अथवा श्रीदेवचन्द्रजी उपाध्यायजी आदिक ने उस कदाग्रह को मिटाय करके समताभाव श्रावकों में भी वहुत कराय दियाथा परन्तु समाचारि एक न करसके। फिर श्रीपद्मविजयजी आदिक भी सव समताभावकोही कराते चलेआये। वल्कि अहमदावाद में स्तवन आदिक कहने में किंचित् कदाग्रह था सो भी मिटा दिया। और पाली, नवाशहर, अजमेर आदि क्षेत्रों में श्रीशिवजी रामजी महाराज ने जो कि किंचित् कदाग्रह था उसको मिटाय कर परस्परतपा और खरतरा की एकत्र व्याख्यानादि में जाना आना करादिया और प्रतिक्रमण आदि में भी (६) आवश्यक शामिल करना चलादिया सो ३९ की साल तक तो कुछ भी विरोध न हुआ परन्तु ३९ की साल में आत्मारामजी के शिष्य कान्तिविजयजी, हंसविजयजी, वीरविजयजी आदिकों ने दो औरतों को खरतरगच्छ की समाचारि छुड़ाय कर तपगच्छ की समाचारि कराई, और कदाग्रह वा लड़ाई शुरू कराई परन्तु खरतरगच्छवालों के तो किंचित् भी ईर्षा न आई। आत्मा-

रामजी ने अपने शिष्यवर्ग को कहकर इन क्षेत्रों में जास्ती खेंचातान कराई सो नागोर, अजमेर आदि शहरों में जिसकी खुशी होय सो देख लेना भाई । इस जैनधर्म बीच दुःखगर्भित वैराग्यवालों ने कैसी धूम मचाई । इसलिये हमने भी किंचित् समिक्षा कर दिखाई । इस लेख को देखकर सत्यासत्य का विचार कर पक्षपात को छोड़कर बैठो भाई ॥ खर अब औरभी सुनो २३मी पङ्क्ति में लिखा है कि (जेकर) यहांसे लेकर पृष्ठ चौथा पङ्क्ति १९वीं तक उसी पुस्तक में देखो हम तो गिन्ती के अक्षर टूकटे में लिखते हैं (तुम्हारी विद्वत्ता प्रगट होवे) सो इसके ऊपर तो हमारा कुछ विशेष कहना है नहीं किन्तु इतना तो हम कहसक्ते हैं पं०प्र० यति श्रीरायचन्दजी विद्वान तो ऐसा है कि श्रीआत्मारामजी के समुदाय में तो ऐसा विद्वान कोई न होगा और उस पुरुष को नवीन चमत्कारी ग्रन्थ बनाने की शक्ति भी इतनी है कि उसके बनाये हुए काव्य का श्रीआत्मारामजी भी उसको देखते ही अर्थ न समझसकेंगे हां अलवत्त जो दो चार छः महीना उसके बनाये हुए काव्य आदि पर परिश्रम करे तो किंचित् अर्थ समझलेय परन्तु हालही उसके बनाये हुए काव्यादि ग्रन्थ को समझलेय सो तो नहीं सो विद्वान तो वो इसकदर हैं परन्तु अपने प्रमाद वश अथवा अपने शिथिलाचार को देखकर विद्वत्ता को जाहिर न करे तो जुदी बात है । और इससे अगाड़ी फिर (परन्तु भोगी और अवृत्ति होके वृत्तिसंजतियों का उपहास और निन्दा लिखते हो) इस लेख को देखकर विद्वान लोगों को सिवाय हँसी के और कुछ रहस्य न मालूम होगा । अजी टुक अपनी तरफ तो खयाल करो कि एक, चर्चाचन्द्रोदय में लिखा है कि आत्मारामजी जब संवत् १९३५में लुधियाने से अम्बाले गये थे उसवक्त आपलोगों का संयतिपना किस-

कोने में रक्खा था। क्या आपलोगों ने इसी में अपूर्व विद्वत्ता अपनी जाहिर करना कि दूसरे शख्सों को फीके शब्दों में लिखकर अपने को विद्वान समझलेना सो इन आपलोगों के फीके शब्दों का तो उत्तर पारवती के दृष्टिरागी श्रावक के नाम से (गप्पादिपकासमीर) का उत्तर (दुरवाधिमुखचपेटका) में देखकर खयाल करो और अपनी पुस्तक में आठवीं पंक्ति पृष्टा ३री में (पं० म० श्रीरायचन्दजी मुनि की रची हुई शुद्धसमाचारि की पुस्तक) इस पंक्ति में "मुनि" शब्द का प्रयोग करते हो और फिर भोगीअवृत्ति कहते हो। और जराभी विचार नहीं करते हो क्या अलौकिक अपूर्व विद्वत्ता आपकी है ॥

दूसरा औरभी सुनो—कि जैनतत्वादर्श तीसरा परिच्छेद पृष्टा १११ में लिखा है कि (कुशील सेवे धन रक्खे, कच्चा सचित्त पानी पीवे, प्रवचन अनापेक्षा वो तो साधु नहीं) इस अपने लेख के ऊपर तो विवेक सहित बुद्धि का विचार कियाहोता कि जो वर्तमानकालमें सफेद कपड़े वाले आचार्य उपाध्याय यति लोग प्रवचन की अपेक्षा से ही धन रखते हों, कच्चा पानी पीते हों तो फिर इनको असंजति कहना आपका लेख मिथ्या है। इसकी विशेष चर्चा देखना होय तो हमारा कियाहुआ (स्याद्वादानुभवरत्नाकर) के तीसरे प्रश्नोत्तर में देखो ॥

तीसरा औरभी सुनो—कि जो (गप्पदीपकासमीर अपर नाम ढूंढक-हितशिक्षा) उसमें अमरचन्द ढूंढिया के कियेहुए १०० प्रश्नों का उत्तर गप्पदीपकासमीर पृष्टा ९६ पंक्ति २२ से २५ तक लिखा है । उत्तर ११वें प्रश्न का (जो पूज्य लोक प्रतिमा पूजते हैं साधू कहाते हैं उनको मैं प्रतिमा पूजनेवाला जानता हूं उनके श्रीपूज्य को माथा टेकने की मेरी इच्छा है और उनका जो श्रीपूज्य है उनको मैं भी पूज्य मानता हूं)

तुम्हारे इस उत्तर के देने से विद्वानलोगों को साफ मालूम होता है कि श्रीपूज्यलोगोंको अच्छा मानना और माथा टेकने अर्थात् नमस्कार करने की इच्छा हुई फिर उनको असंजति कहना क्या अपूर्व विद्वत्ता है। इस लेख से भी आपको एकान्त असंजति वा भोगी लिखना अनुचित है। हमतो मध्यस्थभाव होकर आपलोगों के फीके शब्दों को देखकर हास्यरूप शिक्षा देते हैं। खैर अब आगे की समिक्षा करते हैं सो सुनोः—पृष्ठ चौथा पङ्क्ति तीसरी में लिखा है कि (हमतो यही चाहते हैं कि तपगच्छ और खरतरगच्छ के सर्वसंघ की परस्पर प्रीति बनीरहे परन्तु यह कहावतही ठीक है कि "रांडें तो शील पाला चाहती हैं, परन्तु रँडवे नहीं पालने देते हैं) इस लेख को देखकर हमको अपूर्व आश्चर्य उत्पन्न होता है, लेकिन, इस लिखनेवाले को जैनतत्वादर्शादिक के लेख का बिलकुल विचारशून्य होकर यह मसल लिखमारी; और जैनतत्वादर्श के १२वें परिच्छेद के ५८४ के पृष्ठ के लेख की किंचित् बुद्धि भी न विचारी। अजी अपूर्व विद्वत्ता के धनी थोड़ी नजर फेरकर इस जैनतत्वादर्श के लेखको देखो कि आप १२वें परिच्छेद के ५८४ पृष्ठ में लिखते हो कि (जेसल्मेर आदिकों में खरतरों को प्रतिबोध कर शुद्ध श्रावक बनाया) यह आपका लेख प्रीति तोड़ने का था कि तपगच्छ और खरतरगच्छ की सर्वसंघ की परस्पर प्रीति बनीरहने का था? इसका कुछ तो विचार कियाहोता। केवल मसल लिखकर शुद्धस्वभाविक पं० प्र० यतिरायचन्दजी खरतरगच्छवाले के ऊपरही ढोलकर भोलेजीवों को बहकायदेना क्या अपूर्व मायावी विद्वत्ता आपकी है। और ज्यादा तो लिखने का हमारा काम नहीं है॥

अब पाठकगणों! इनकी पुस्तक देख और हमारी समिक्षा देख

आत्मार्थ की चाहना होय तो सत्य ग्रहण करो और असत्य को छोड़ो कदाग्रह से मन मोड़ो कदाचित् खरतरवाले यति वा श्रावकों को प्रीति तोड़कर आपस में कदाग्रह करनाहोता तो जिसवक्त में जैनतत्वादर्शादि पुस्तकें छपी थीं उसी वक्त उन लेखों को देखकर खण्डन मण्डन चलाय देते। परन्तु खरतरगच्छवाले तो सरलस्वभाव और परस्पर प्रीति रहने के ही वास्ते प्रत्युत्तरादि पुस्तक न रची। दूसरा—वर्तमानकाल में यति-लोग परिग्रहधारी होने से हरेक गच्छवाले श्रावक की शिष्टाचारी और प्रीतिभाव रखते हैं किन्तु श्रावकलोग तो कोई२ धनादिक के अभिमान से गच्छादिक का मिमत्तभाव दिखलाय देते हैं तिसपरभी वे यतिलोग धनादिक के लोभ से किसी श्रावक को अप्रीति नहीं जताते। और यह जिनधर्म ओसवाल पोरवाडादि जातिकुल का धर्म होनेसे और आपस में जुदी२ प्ररूपणा के कारण से इन ग्रहस्थियों को यथावत् तो श्रद्धा रही नहीं और जातिकुल का धर्म जानकर अपनी इच्छा मुजिब प्रवृत होते और अपने स्वार्थ को सिद्ध करते हैं। और गच्छों में इधर के उधर बैठते फिरते हैं क्योंकि देखो बीकानेर में जो सिपानी बाजते हैं उनका एक बुजुर्ग (वडील) कमलेगच्छ मेंसे उठकर सन्तान के वास्ते तपगच्छ के आदेशी यतिजी से वासक्षेप लेकर तपगच्छ में बैठने लगा सो उसके पीछे परिवार बढ़ा सो सिपानी गोत्र से प्रसिद्ध है। यह बात हजारी-मल सिपानी की जबानी मेरे श्रवण करनेमें आई है। और मेडता में भी जो कि वेदमोहता जाति के ओसवाल हैं सो वे भी कमलेगच्छ के यति से ना थंभा की बैठक के ऊपर लड़ाई होने से उस कमलेगच्छ को छोड़कर तपगच्छ में जा बैठे। इस रीति से इन ओसवाल पोरवाड जातियों में जो गृहस्थिलोग हैं सो इधर के उधर कोई तो वादविवाद झगड़े आदि

के कारण से कोई स्वार्थसिद्धि चमत्कार के वास्ते जा बैठते हैं । इस बैठने से ही जो कोई अपने को शुद्ध माने और दूसरे को अशुद्ध कहे तो सिवाय परस्पर प्रीति तोड़ाना और आपस में लड़ाना इसके अन्यथा फल कुछ नहीं है ॥ अब इसी चौथे पृष्ठ में प्रश्न उठाया है सो लिखते हैं । प्रश्न ॥ (इस प्रीति के भङ्ग करनेवाले तो मुनि आत्मारामजी ही हैं कि जिन्हों ने अपने जैनतत्वादर्श में खरतरगच्छ को सं० १२०४ में उत्पन्न हुआ लिखा है तो फिर प्रीति का भङ्ग क्यों न होगा ॥

उत्तर ॥ हे प्रियवन्धव तुम पूर्वोक्त श्रीआत्मारामजी का लेख असत्य न जानना क्योंकि श्रीआत्मारामजी ने जो संवत् १२०४ में खरतर विरुद् की उत्पत्ति लिखी है तिन ग्रन्थों के नाम आगे चलकर लिखेंगे प्रथम तो इस पुस्तक की पीठिका में जो२ अयुक्त बातें लिखी हैं तिनका उत्तर लिखते हैं) यह पांचवें पृष्ठ की पङ्क्ति ३री तक लेख उस पुस्तक में देखो इस लेख की हम समिक्षा करते हैं सो पाठकगण बुद्धिपूर्वक विचारें । यह लेख इनका प्रश्न उत्तर मानो काल्पितमायावृत्ति का लेख है सो हम इनकी कितनीही बातें तो पीछे की समिक्षा में लिखाय आये हैं और किंचित् यहांभी दिखाते हैं । कि (खरतर विरुद् की उत्पत्ति संवत् १२०४ में लिखी इससे प्रीति का भङ्ग होता है) सो तो पुस्तक ४० की साल में छपी थी परन्तु किसी खरतरगच्छवाले यति वा श्रावक ने इस बात के ऊपर लेख लिखकर झगड़ा न उठाया । शुद्धसमाचारि की पुस्तक तो मकसूदाबादवाले श्रावक ने मुनि हंसविजयजी के साथ समाचारि का कहना सुनना हुआ तिसपर छपाई है—इसलिये इनका प्रश्नोत्तरवाला लेख मायावृत्ति का होने से भोलेजीवों को कदाग्रह में डालने का हुआ परन्तु झगड़े की नींव और कलह को बधानेवाले श्रीआत्मारामजी हैं

अब क्या हमेशा की रीति है ? जबसे इन्हों ने होश सम्हाला तबसे ही इनकी आदत चलीआती है इसपर एक दोहा भी कहाकरते हैं ॥ आदत झगड़े की पड़ी, कभी न छूठत धोयां । नीलरंग सौ बरस में, नहीं छूटत है धोयां ॥ सो ढूंढकमत में भी इन्हों ने अनेक तरह के झगड़े टंटे फैलाये परन्तु उन झगड़ों टंटों को लिखने से तो हमारेको कुछ प्रयोजन है नहीं परन्तु जबसे इन्हों ने संवेगपक्ष धारण किया है जिसके बाद खरतरगच्छ वा तपगच्छ बल्कि कुल जैनमतियों से ही प्रीति भङ्ग करने के लेख लिख डाले । सो अब किंचित् पाठकगणों को दिखाता हूं सो इसके ऊपर गौर करना चाहिये । प्रथम तो देखो जैनतत्वादर्श के १२वें परिच्छेद में तो १२०४ के साल में खरतरगच्छ की उत्पत्ति लिखी है और इसी परिच्छेद के ५८४ के पृष्ठ में ऐसा लिखते हैं कि (जेसलमेर आदिकों में खरतरों को प्रतिबोध कर शुद्ध श्रावक बनाया) अब इस लेख को पाठकगण विचार करें कि खरतरगच्छवालों से प्रीति भङ्ग करना इन्होंने उठाया या किसी औरने ? सो इस लेखपर भी खरतरगच्छवाले यति और श्रावकलोग श्रीआत्मारामजी वा इनकी समुदायवाले साधुओं की अच्छीतरह से भावभक्ति करना और इनको मानना और जैनतत्वादर्श के लेख की बातों को न यादकरना इस रीति से चलतेहुए भी उनपर अपना आक्षेप करते बल्कि हंसविजयजी पूर्व में कलकत्ता, मकसूदाबाद आदि में गये जब अच्छीतरह से श्रावकों ने मानप्रतिष्ठा करी और जैनतत्वादर्श के लेखपर किंचित् भी खयाल न किया । खैर अब दूसरी बात सुनो कि तपगच्छवालों से भी इन्हों ने प्रीति भङ्ग करने का झगड़ा फैलाया सो ही दिखाते हैं । जो कि श्रीसत्यविजयजी उपाध्याय के परं-

में पीतवस्त्र धारणकरनेवाले और तपगच्छ के आचार्य उपाध्याय

पन्यास यतिलोग सबकोई कान में मुखपत्ती गेर कर व्याख्यान देते हैं सो इन्हों ने उसको निषेध कर हाथ में- मुखपत्ती रखना और कान में न गेरना और इसके ऊपर सबसे वादविवाद करना बल्कि गुजरात में अहमदाबाद आदि शहरों में ऐसा होगया कि इनकी समुदायवाले साधु को विद्याशालादि मकानों में भी नहीं उतरने देते हैं। इसतरह प्रीतिका भङ्ग इन्हों ने एक अपनी समुदाय में भी चलाय दिया क्योंकि वे तो गुजराती लोग थे नतु खरतरवालों की तरह सरलस्वभावी थे। इसीलिये श्रीआत्मारामजी ने जैनतत्वादर्श में लिखा है कि गुजराती लोग हठीले हैं और जितने भेद हुए सब गुजरात से ही हुए हैं॥ तीसरा—श्रीआत्मारामजी ने सोरठ देश को अनार्य कहा। तिसपर इनके दादा गुरू वा काका गुरू पन्यास श्रीरत्नविजयजी ने इनसे पूछा तिसपर इन्हों ने हठ करके अपना वचन सिद्ध किया। तब पन्यास श्रीरत्नविजयजी ने (आर्य अनार्य विज्ञापन) छपायकर भव्यजीवों की श्रद्धा उस सोरठदेश में ; जो अनादि (सिद्धाचलजी) तीर्थ है उसपर यथावत् बनीरहे इसलिये सर्व जगह जाहिर किया था। तिस पत्र को खण्डन करके श्रीआत्मारामजीने (आर्यदेशदर्पण) नाम का ग्रन्थ छपायकर प्रसिद्ध किया था और उसमें कई तरह के फीके शब्दों से पन्यासजी के ऊपर आक्षेप किया था खैर। अब चौथा औरभी सुनो कि जैनधर्मविषयिक प्रश्नोत्तर की पुस्तक पृष्ट १७०।१७१ तक इन्हों ने ऐसा लिखा है कि (इस हेतु से हम इस काल के जैनमतियों को बहुत नालायक समझते हैं) सो इस इनके लेखपर तो किंचित् विचार हमारा कियाहुआ (स्याद्वादानुभवरत्नाकर) के तीसरे प्रश्न के उत्तर में है सो वहांसे देखो। अब ऊपर लिखेहुए लेख को आत्मार्थिभव्यजीव पक्षपात को छोड़कर विचार करें कि इनका लेख मायावृत्ति

से भोले जीवों को वहकाने का है या नहीं । जो लेख हमने ऊपर दिखाया है उस लेख से तो श्रीआत्मारामजी और उनकी समुदायवाले सबसे प्रीति भङ्ग करते हैं । केवल झगड़ा उठाय कर अपनी विद्वत्ता दिखाते हैं । पं० प्र० रायचन्द यति को झूठा कलङ्क लगाते हैं । आपतो प्रीतिभङ्ग का काम करें दूसरे के ऊपर धर भोले जीवों को अपने जाल में फसाते हैं । तपगच्छ का नाम ले अपना जुदाही पंथ चलाते हैं । श्रीसत्यविजयजी उपाध्याय की पंक्ति को छोड़ फिर अपना गुरु उन्हीं को वतलाते हैं । खैर अव इसके आगे की समिक्षा करते हैं कि पृष्ठ ८ पङ्क्ति ३री में जो शुद्धसमाचारि की प्रतीक लीनी है सोही दिखाते हैं ॥ प्रथम प्रारम्भ में ही जो यह लिखा है कि [जाननाचाहिये इस पंचम-काल में भगवान श्रीमहावीरस्वामि से अविछिन्न परम्परा में कोटि गच्छ चन्द्रकुल वयरिशाखा और खरतर विरुद धारण करनेवाले आचार्य उपाध्याय साधु उदयकालमें युगप्रधानादि गुणधारक निजगुण में चढाव और अस्तकाल में निजगुण में उतार होते चलेआते हैं—इसीतरह अवि-छिन्न परम्परा पंचमकाल में २३ उदय के अन्त तक युगप्रधान दुप्पस्स-हसूरि तक आचार्यादिक होता रहेगा] इतना लेख शुद्धसमाचारि का है अव इन लोगों ने लिखा है, इस लेख का उत्तर (कोटिगच्छ चन्द्रकुल वयरिशाखा की परम्परा में श्रीदुप्पस्सहसूरि अन्त के युगप्रधान आचार्य होवेंगे—ऐसा लेख लिखते तो हमारे मन में शङ्का उत्पन्न नहीं होती परंतु खरतर विरुद धारक यह पद जो तुमने लिखा है इस लेख से तो यही सिद्ध होता है कि तेवीसही (२३) उदय में जो२ युगप्रधान होगये हैं वा आगेको जो२ होवेंगे वे सर्व खरतर विरुद धारक गच्छ में ही हैं—ऐसा लेख जो तुमने लिखा है और हमारी समझ मुजिब तो यह लेख

तुमने बहुतही अप्रमाणिक लिखा है क्योंकि तुम्हारे कहने मुजिब तो संवत् १०८० में श्रीजिनेश्वरसूरिजी को दुर्लभ राजा की सभा में चैत्यवासियों को जीतने से खरतर विरुद मिला ऐसा जब मानते हो तब तो संवत् १०८० से पहिले जो२ युगप्रधान और आचार्य होगये थे वे सब खरतर विरुद के धारक किसतरह सिद्ध हुए) २०वीं पङ्क्ति तक ऐसा लिखा है । अब हम इसकी समिक्षा करते हैं कि इस लेख को देखकर लिखनेवाले का खरतर विरुद इस शब्द से ही द्वेष मालूम होता है सो यह द्वेष करनेवाला खरतर विरुद धारक शब्द से विपरीत अर्थ विरुद धारण करनेवाले को अंगीकार करता है सोही दिखाते हैं कि कोटिगच्छ चन्द्रकुल वयरिशाखा इसमें तो इनको कोई तरह की शङ्का है नहीं परन्तु खरतर विरुदधारक इस शब्द में इनको शङ्का हुई सो (खरतर विरुद-धारक) यह लेख भी अप्रमाणिक लिख दिखाया । तो अब इन साहवों से पूछना चाहिये कि (खरतरविरुदधारक) इस शब्द का अर्थ क्या होगा। और विद्वानलोग उस अर्थ को अच्छा समझेंगे वा बुरा, सो इस (खरतर-शब्द) का अर्थ तो बहुत है परन्तु किंचित् भावार्थ लिखता हूं कि (खरतर कहतां । खरा उत्तम श्रेष्ट उसमें भी तर कहिये अत्यन्त विशिष्ट उत्तम उसका नाम खरतर) ऐसा जो विरुद है जिनका उसका नाम खरतर-विरुद धारक है । और जो विशेष अर्थ किसी को देखना होय तो उपाध्याय श्रीबालचन्द्रजी ने इस शब्द के १५० | २०० अर्थ किये हैं सो उनसे मँगायकर देखलेना मैंने यह बात किसी से सुनी है । शायद १० | २० अर्थ तो शुद्धसमाचारि में भी खरतर शब्द के हैं । जब ऐसा खरतर विरुद धारक शब्द का अर्थ हुआ तो इस अर्थ में युग प्रधानों के होने में कोई विद्वान सत्पुरुष तो शङ्का करे नहीं किंतु तुम्हारे

जैसे विवेकशून्य बुद्धि विचक्षण शङ्का करे तो कुछ आश्चर्य नहीं। अजी साहेब कुछ बुद्धि का तो विचार करो कि युगप्रधान पद धारण करनेवाले खरतर विरुद धारक नहीं तो क्या खोटातर विरुद धारक में हुए। हाय इतिखेदे। इस जैनमत में कैसी व्यवस्था होगई और होती-चलीजाती है। अपनी बात स्थापने के वास्ते परभव की दहसतभी नहीं आती है। दूसरे के शुद्ध वचन को भी खण्डन करने में चलती उनकी छाती है। विद्वानों की सभा में ऐसे लेखों की हँसी होजाती है। खैर अब इसी २५वीं पङ्क्ति में फिर इन्हों ने लिखा है (और प्रथम उदय में २० युगप्रधान आचार्य हुए हैं तिनमें से एक वज्रस्वामि को वरज के शेष १९ युगप्रधानों का कोटिगच्छ चन्द्रकुल वयरिशाखा और खरतर विरुद नहीं था क्योंकि कोटिगच्छ तो श्रीआर्यसोहस्तिसूरि के शिष्यों से प्रसिद्ध हुआ है और आर्यमहागिरिजी, श्यामाचार्य, स्कन्दलाचार्य आदि तो कोटिगच्छ चन्द्रकुल वयरिशाखा में हुए ही नहीं हैं क्योंकि श्रीनन्दी-सूत्र में जो पट्टावली देवर्धिगणिक्षमाश्रमणजी की लिखी है सो श्रीनन्दीसूत्र के टीकाकार श्रीमलयगिरिजी महाराज लिखते हैं कि यह पट्टावली श्री आर्य महागिरिजी की है इसवास्ते इस पट्टावली के युगप्रधानों का न तो कोटिगच्छ था, न चन्द्रकुल था, न वयरिशाखा थी तो फिर तुमने पूर्वोक्त लेख छपवाया है तिसमें क्या प्रमाण है सो लिखना, वाहजी वाह प्रथम कवलेही मक्षिकापातः) ऐसा ६ पृष्ठ १२वीं पङ्क्ति तक लिखा है इसकी हम समिक्षा करते हैं सो पाठकगण सुनें। वाहजी वाह प्रथम कवलेही मक्षिका पातः इस शब्द को देखकर हमको ऐसा मालूम होता है कि इस पुस्तक के बनानेवाले ने शुद्धसमाचारि के छपानेवालों से ईर्षा अर्थात् द्वेषबुद्धि से ही बिना विचारे ही शब्द लिखमारे क्योंकि देखो कोटिगच्छ

चन्द्रकुल वयरिशाखा इसमें तो इनको ८मी पृष्ट के लेख से ही इनको कोई तरह की शङ्का ममेंभी नहीं क्योंकि यह पहिले लिखचुके हैं। इनको तो केवल इस "खरतरविरुदधारक" शब्द से ईर्षा थी सो उस शब्द के ऊपर तो हम पीछे लिखचुके हैं खैर ॥ अब इनके लेख के ऊपर किंचित् पाठकगणों को औरभी विचार करके दिखाते हैं और इनका द्वेष प्रगट करते हैं सज्जनपुरुषों को शास्त्रानुसार युक्ति दिखाते हैं कि देखो श्रीमहावीरस्वामिजी के अग्यारह गणधर और नव गच्छ थे उन सबों के शेष में एक श्रीसुधर्मास्वामि बाकी रहे तो अब इस जगह विचारना चाहिये कि निग्रन्थगच्छ एक सुधर्मास्वामि से ही चला और बाकी के गणधरादिक श्रीसुधर्मास्वामि के निग्रन्थगच्छ में लिखते थे। और जिनर गणधरों के शिष्यादिक थे वे सब सुधर्मास्वामि की ही आज्ञा में चलते थे। और उसवक्त के जितने आचार्य उपाध्याय साधु जो उन गणधरादिक की परम्परा में थे वे कुछ सुधर्मास्वामि के शिष्यादिकों में नहीं थे। और जितने जो अपनी परम्परा मिलाते हैं सो सब सुधर्मास्वामि से लेकर महावीरस्वामि से जाय मिलाते हैं बल्कि जितने श्रीमहावीरस्वामिजी के हस्तदीक्षित हुए उन सत्पुरुषों ने जुदे २ प्रकर्ण बनाये परन्तु सब प्रकर्ण आचार्य उपाध्याय वा गणधरादिकों के साधु सब श्रीसुधर्मास्वामि के अन्तरगत होगये। इसलिये श्रीसुधर्मास्वामिजी की ही परम्परा चली। अब इस जगह कोई विवेकशून्य कहे कि नहींजी अमुकर आचार्य तो इस निग्रन्थगच्छ में नहीं थे। तो उसे कुतर्क को कोई विद्वान जिन आगम के रहस्य के जाननेवाले उस कुतर्कवाले को अच्छा नहीं कहेंगे। किंतु यही कहेंगे कि यह जिनआगम के अभिप्राय का अजान है जो जानकार होता तो इसको ऐसी कुतर्क कदापि न उठती खैर। अब दूसरी और

सुनो कि श्रीकल्पसूत्रजी के मुजब वा ६४ गच्छ की परम्परा लिखी है परन्तु उसके अनुसार एकभी यथावत् न रही और सब का मिलकर एक कोटीगच्छ मुख्यकरके रहगया और उसी की परम्परा श्रीसुधर्मास्वामि से मिलने लगी । तो जैसे और गणधरों के गच्छादिक एक श्रीसुधर्मास्वामि के गच्छ में अन्तरगत अर्थात् मिलगये । तैसेही जो कल्पसूत्र के जितने गच्छादिक थे वो भी सबकोटिगच्छ में अन्तरगत होगये । इसलिये एककोटिगच्छही मुख्य रहा । इसलिये कुल युगप्रधानों की गिन्ती सुधर्मास्वामि की परम्परा में ही रहेगी नतु अन्य गणधरों की परम्परा में । इसलिये केवल द्वेषबुद्धि से (वाहजी वाह प्रथमकवले ही मक्षिकापातः) इस शब्द को इस पुस्तक के लिखनेवाले ने अपनी अपूर्व विद्वत्ता बालजीवों को दिखाई । इनकी कीहुई कुतर्क कुछ विद्वानों की समझ में न आई । पृष्ठ ६ पंक्ति १३वीं में लिखते हैं कि [प्रथम कोटीगच्छ में से शाखावत् चौरासी गच्छ हुए] यह लेख तो इतना शुद्धसमाचारि का है ॥ अब इस लेख का जो इन्हों ने खण्डन लिखा है उस खण्डन को १४वीं पंक्ति से लेकर ७वां पृष्ठ पंक्ति ११वीं तक है (यह लेख भी मिथ्या है. क्योंकि वड़गच्छ से (बृहद्गच्छ से) कोई चौरासी कोई आठ गच्छ हुए ऐसा लेख कितनेही गच्छों की पट्टावलियों में लिखा है ऐसा हमारे बांचने में आया है और तुम्हारे खरतरगच्छिया श्रीक्षमाकल्याणकजीगणि कत्थे के रंगे वस्त्र पहिरनेवाले अपनी रची पट्टावली में लिखते हैं कि श्रीउद्योतनसूरिजी से ८४ गच्छ की स्थापना हुई है । और खरतरगच्छिये श्रीजैसोमगणि अपनी रचीहुई पट्टावली में लिखते हैं कि श्रीसर्वदेवसूरिजी से वड़गच्छ की स्थापना हुई इसमें आचार्य बहुत होने से बृहद्गच्छ नाम हुआ । इस लेख से यह सिद्ध होता है कि बहुतगच्छ

वड़गच्छ की शाखा है और श्रीनागपुरिय तपगच्छ की पट्टावली में लिखा है कि श्रीउद्योतनसूरिजी के पाट ऊपर श्रीसर्वदेवसूरिजी हुए तिनसे वड़गच्छ की स्थापना हुई। और आंचलगच्छ की पट्टावली में लिखा है कि श्रीउद्योतनसूरिजी ने विक्रम संवत् ९९४ में अपने स्वय शिष्य ८४ जनों को आचार्यपद दिया जहांसे ८४ गच्छों की स्थापना हुई तिन ८४ शिष्यों में मुख्यशिष्य सर्वदेवसूरिजी थे वड़वृक्षनीचे आचार्यपद दिया इसवास्ते वड़गच्छ नाम प्रसिद्ध हुआ प्रबन्धचिन्तामणि में निर्ग्रन्थ १. कोटिक २. चन्द्र ३. वनवासी ४. वड़गच्छ ५. और तप ६. यह छःही नाम एकही गच्छ के कालान्तर में होतेभये ऐसा लिखा है। अब दृष्टि देकर विचारना चाहिये कि श्रीकोटिगच्छ से ही शाखावत् ८४ गच्छ हुए ऐसा कैसे सिद्ध होगा। इसवास्ते तुम्हारा लेख अप्रमाणिक है) इस लेख को देखकर हम कहते हैं कि ऐसी अपूर्व मायावृत्ति की विद्वत्ता किस खाड़ मे से लायकर इकट्ठी करी है कि जिस मायाबुद्धि से यह ग्रन्थ रचा है॥ अजी साहब भला कुछ विचार तो करो कि जो मसले जगत् में कहे हैं सो सभी ठीक हैं सो मसला यह है कि:— ग्वालिनी सबही अपनी छाछ को मीठी कहती है और दूसरे के दूध को भी खट्टा कहकर बहकाय देती है सो आपने भी अपनी विद्वत्ता भोले जीवों को अच्छी बताई और दूसरों के लेखों को झूठी दर्शाई। अभी आपको जिनआगम के रहस्य की कूंची हाथ न आई। केवल ढूंढकमत के छोड़ने से ही मन्दिर आमनाय में पोल देख अपनी दुकान जमाई। अजी आपही अपने लेख के ऊपर कुछ विचार करो कि जितना लेख आपने लिखा है और तिन गच्छ में चार शाख्सों और पांचमी प्रबन्धचिन्तामणि यह पांच साख लिखी। और कोटिगच्छ से ८४ गच्छ का

निषेध किया । यह तुम्हारा निषेध करना तुम्हारे लेख से ही विद्यार्थी की समझ में नहीं ठहरता है । क्योंकि देखो इन पांचों का लेख पांच-तरह का है इसलिये तुम्हारा लेख तुमकोही बाधा देता है । परन्तु और लेखों को छोड़कर केवल एक (प्रबन्धचिन्तामणि) ग्रन्थ के लिखनेमुजब तुम्हारे को अंगीकार है और इसी ग्रन्थ के अनुसार तुमने जैनतत्वा-दर्श के १२वें परिच्छेद में लिखा है और इसी लेख को तुम बहुत प्रमाणिक मानते हो सो अब यह तुम्हारे गच्छों के नाम हैं । इनहीं के ऊपर तुम्हारे बनाये हुए ग्रन्थों के लेख से ही यह छः नाम यथावत् नहीं ठहरते हैं सो ही दिखाते हैं ॥ निग्रन्थ, कोटिक, चन्द्र, बनवासी, वड़-गच्छ, तप ६, यह तो तुम्हारी प्रबन्धचिन्तामणि ग्रन्थ के अनुसार इस पुस्तक में है ॥ और निग्रन्थ १, कोटिक २, चन्द्र ३, बनवासी ४, वड़गच्छ, और वड़गच्छ का ही नाम तपगच्छ हुआ । ऐसा जैनतत्वा-दर्श के १२वें परिच्छेद में लिखा है । और जो राजेन्द्रसूरिजी के खंडन के वास्ते च्यारथुई की चर्चा की पुस्तक की प्रशस्ति के पृष्ठ ६ में ऐसा लिखा है कि (श्रीवज्रस्वामिशाखायां चन्द्रकुलकोटिकगणे वृहद्गच्छे तप-गच्छअलंकार भट्टारक श्रीजगतचन्द्रसूरिजी महाराज अपनेको शिथिला-चारि जानकर चैत्रवालगच्छिया श्रीदेवभद्रगणि के समीपे चारित्रोपसम्-पाद अर्थात् फिरकर दीक्षा लीनी) ऐसा लिखा है ॥ और जैनधर्म विषयक प्रश्न उत्तर पुस्तक के ८०वां प्रश्न के उत्तर में पृष्ठ १०३में लिखा है कि (श्रीवज्रसेनजी ने श्रीसौपारकपट्टन में दीक्षा दीनी थी तिनके नाम से चार शाखा अर्थात् कुल स्थापन किये वे ये हैं—नागेन्द्र १, चन्द्र २, निवृत्ति ३, विद्याधर ४ यह चारों कुल जैनमत में प्रसिद्ध हैं तिनमें से नागेन्द्रकुल में उदयप्रभु और मल्लसेनप्रमुख और चन्द्रकुल में वड़गच्छ

और तपगच्छ खरतरगच्छ पूरणपल्लियागच्छ हुए) ऐसा उस पुस्तक में लिखा है। अब यह ऊपर लिखाहुआ लेख तिन पुस्तकों का तो खुद श्रीआत्मारामजी की बनाई हुई जिनका है। और एक लेख प्रबन्ध-चिन्तामणि का है। सो इन लेखों का विशेष विचार तो हमारा किया हुआ (स्याद्वादानुभवरत्नाकर) ग्रन्थ में है वहांसे देखो परन्तु किंचित् आत्मार्थि पाठकगणों को इस जगह भी दिखाता हूं कि हे पाठकगणों इन ऊपर लिखी श्रीआत्मारामजी की बनाई हुई पुस्तकों के लेख को देखकर विचार करो कि यह इनके लेख कितनी विद्वत्ता के भोले जीवों को भ्रमानेवाले हैं। अजी साहब कुछ विचार कर देखो कि एक जगह तो आप बड़गच्छ का नाम ही तपगच्छ कहते हो। और एक जगह आप लिखते हो कि चन्द्रकुल में बड़गच्छ, तपगच्छ, खरतरगच्छ और पूरन-पल्लियागच्छ हुए तो फिर बड़गच्छ का नाम तपगच्छ क्योंकर बनगया। और फिर एक पुस्तक में लिखते हो कि वज्रशाखायां चन्द्रकुले कोटिक गणे बृहद्गच्छे श्रीजगत्चन्द्रसूरिजी अपने शिथिलाचार को देखकर चैत्र-वालगच्छिया देवभद्रगणि के पास में फिरकरके दीक्षा लीनी। इस लेख के देखने से तो तुम्हारे बड़गच्छ का नाम तपगच्छ क्योंकर हुआ। और प्रबन्धचिन्तामणि के लेख से और तुम्हारे जैनतत्वादर्श के लेख से तो तुमको चन्द्रकुल और कोटिगण कहनाही सिद्ध नहीं होता क्योंकि कोटिगच्छ से तो तुम्हारा चन्द्रगच्छ होगया। और चन्द्रगच्छ के बाद फिर बनवासीगच्छ होगया। और बनवासी से फिर बड़गच्छ होगया। तो फिर इन तीनों को छोड़कर जो तुम कोटिगच्छ और चन्द्रकुल वज्र-शाख मानते हो सो असम्भव है। क्योंकि कोटिगच्छ से तो तुम्हारा बदलकर चन्द्रगच्छ और बनवासीगच्छ अथवा बड़गच्छ नाम ही भिन्न

होगया । तो फिर क्योंकर कोटिगच्छ में तुम अपनेको गिनाते हो और चारथुई के निर्णय में श्रीपूज्यपाद देवेन्द्रसूरिजी की भी शाखा देखकर क्यों नहीं शरमाते हो । इत्यादि परस्पर के विरोध जो तुमने अपनी जुदे२ पुस्तक में जुदे२ लिखे हैं उन सब को विचारो तो ऐसे२ लेखों को कदापि न लिखो । गीतार्थ और विद्वानों के लेख ऐसे ऊटपटांग परस्पर विरोधवाले नहीं हुआकरते । जैसे कि तुमने विनाविचारे लिख-दिये । खैर मैंने तो किंचित् लिख दिखाया है क्योंकि ग्रन्थ बढ़जाने के भय से विशेष नहीं लिखसक्ता । हां इन बातों का निर्णय तो सभा के बीच मध्यस्थों के सामने खुलासा होसक्ते हैं पुस्तकों में उतने लेख नहीं लिखसक्ते । इसरीति से ऊपर के लेख को देखो और अपनी शान्ति करो । हां अलबत्त आपकी पुस्तकों के लेख मुजब बड़गच्छ की शाखा पूनमियामत, सार्द्धपूनमियामत, आंचलियामत और त्रिस्तुतिक (कडुवा) मत इत्यादि अनेक शाखा जो उस बड़गच्छ (बृहद्गच्छ) में से निकली होय तो कुछ आश्चर्य नहीं । क्योंकि जब तुम अपने को ही बड़गच्छ से मानते हो तो तुम्हारी १५ गद्दियों में भी आपस की समाचारि में भिन्न२ता है सोही दिखाते हैं ॥ नागपुरिया-तपगच्छ-गद्दी में श्रुतदेवता की स्तुति उठाते हैं और पंचमी की छमछरी करते हैं ॥ और आनन्दसूर गद्दी में श्रावक को सामायिक पारती दफे इरियावहि नहीं करवाते हैं ॥ और राजेन्द्रसूरि पहले करेमिभन्ते पीछे इरियावहि कराता है ॥ और जो शुद्धसमाचारि का उत्तर बनानेवाले (सूरिमंत्र) आचार्य वा गुरु के बिना दियेहुए और वासक्षेप बिदुन रागीश्रावकों के बनायेहुए (विजया-नन्दसूरि) नाम के धारण करनेवाले श्रीसत्यविजयजी उपाध्यायजी की परम्परा में पीले कपड़े करके उन्हीं श्रीसत्यविजयजी उपाध्यायजी की

समाचारि वा प्रवृत्ति से अपनी प्रवृत्ति भिन्न करने लगे ॥ इस रीति से ऊपर लिखेहुए भेद होनेसे लौकिक मसला ऊपर के लेखपर यथावत् घटती है सो मसला यह है ॥ मापतिपुतपितापतियोड़ा, बहुत नहीं तो थोड़ाथोड़ा ॥ क्योंकि नीम को चाहे जैसा घी, खांड़, दूध से धोवो अर्थात् सिंचन करो परन्तु उसका कडुवापन नहीं जायगा आखिर को अपना असर लावेगा ॥ सो इस वड़गच्छ की उत्तमता में आपलोग अपने मिलने के वास्ते ऊपर लिखे मुजब दूषण लगाते हो परन्तु हमतो उस वड़गच्छ को उत्तम ही समझते थे। इसलिये जब कोटिगच्छ से चन्द्रगच्छ, वनवासीगच्छ, वड़गच्छ जुदी शाखा होगई। और जो सत्पुरुष अपनी समुदाय में कोटिगच्छ ही में चलेआये और जो बीचमें प्रभाविक आचार्यादिकों से कुल वा विरुद हुआ, सो भी उस गच्छ के साथ ही लगाते आये। इसलिये श्रीकोटिगच्छ से ही शाखावत् ८४ गच्छ हुए। इसलिये श्रीउद्योतसूरिजी ने ८३ विद्याशिष्यों को वासक्षेप देकर आचार्यपद दीना और ८३ गच्छ जुदे२ चले। और चौरासीमा जो अपना निज शिष्य उसको अपनी गद्दी पर बैठायकर जो अपना गच्छ था उसी गच्छ के नाम से प्रसिद्ध रहा ॥ इसलिये कोटिगच्छ से ही सर्व गच्छ शाखावत् होगये। इसमें विवेकी पुरुषों को तो सन्देह है नहीं और जो विवेकशून्य बुद्धिविचक्षण दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवाले गुरुकुलवास रहित सन्देह रक्खें तो उनकी खुशी ॥ अलम् विस्तरेण ॥ और ७वें पृष्ट की पंक्ति १३वीं से लेकर १६वीं पंक्ति तक जो श्रीअभयदेवसूरिजी के मध्ये लिखा है सो तो हमको छापेवाले का दूषण मालूम होता है क्योंकि पं० प्र० यति रायचन्द्रजी जानता है कि श्री-अभयदेवसूरिजी महाराज ने पंचासक की टीका रची है मूल तो श्री-

हरिभद्रसूरिजी का कियाहुआ है ऐसा वह जानते हैं। और मेरे से भी एक दो वार ऐसाही जिकर हुआ था सो यह छापेवाले का दूषण है। सो यह केवल पं० प्र० यति रायचन्द्रजी को दूषण देना द्वेषबुद्धि के सिवाय और कुछ नहीं है॥ और इसी पृष्ठ की पंक्ति १७वीं में लिखा है कि (श्रीहेमाचार्य मल्लधारगच्छ में नहीं थे किंतु पूरनपल्लियागच्छ में थे) इस लेख के ऊपर जो कि शुद्धसमाचारि छपानेवाले श्रीकोठारी श्रावक ने चिठी लिखकर भेजी है उस चिठी में इस मल्लधारगच्छ वा पूरनपल्लियागच्छ के मध्ये ऐसा लिखकर भेजा था कि मैं विजयगच्छ के श्रीक्षान्तिसागरजी की जबानी योगसास्त्र बांचते सुना था कि हेमाचार्यजीस्वामि ने अमावस को पूर्णमासी कर दिखाई इससे मल्लधार और पूरनपल्लियागच्छ एकही है हम भी उसी गच्छ में हैं विजयगच्छ तो हमारा विजयचन्द्रसूरिजी से प्रसिद्ध है हम मल्लधारगच्छ में ही हैं कुमारपालको प्रतिबोधनेवाले हमारे पूर्वज हुए हैं संग्रेनकर्ता का संवत् मिलाने से आपकी भ्रान्ति दूर होसकेगी॥ ७वें पृष्ठ की २५वीं पंक्ति में लिखा है कि (श्रीअभयदेवसूरिजी खरतरगच्छ में न हुए ऐसा धर्मसागरजी कहगये हैं) इस लेख का जवाब हम पीछे से लिखेंगे॥ ८वें पृष्ठ की ५वीं पंक्ति में लिखा है कि (नवीन पट्टावली तपगच्छ की बनाई इतनी तो शुद्धसमाचारि की प्रतीक है) इसपर इन्हों ने लिखा है यह लेख मिथ्या है क्योंकि श्रीतपगच्छ की पट्टावली श्रीमुनिसुन्दरसूरिजी ने भी रची है, यहांसे लेकर १५वीं पंक्ति तक जो लेख लिखा है सो केवल बालकों को भुलाने के वास्ते अपनी विद्वत्ता जताई है। इतने लिखने में मतलब की बात किंचित् भी हाथ न आई है॥ क्योंकि देखो धर्मसागरजी की बनाईहुई पट्टावली क्या प्राचीन कहदेना ठीक है आहाहा क्या आपकी बुद्धि